

"हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव पर्व त्यौहार"

प्रा. डॉ. मनीषा बाळासाहेब जाधव
सहाय्यक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
कला व वाणिज्य महाविद्यालय,
117, शुक्रवार पेठ, सातारा – 415001
मो. 8888411566
mbj2010@rediffmail.com

सारांश:

"पहाड़ी आंचलिकता" का सूक्ष्म अर्थ है सिर्फ उबड़-खाबड़ और पथरीली चट्टानों से युक्त भूमी का वर्णन ही नहीं अपितु वहाँ के अज्ञानी, अशिक्षित शोषित, पीडित, उपेक्षित, दुखी मानव मन का चित्रण भी है जो उनकी मानसिकता की पतों को खोलता है। "पहाड़ी अंचल" "आंचलिकता" का नया और अनछुआ प्रकार है उसपर कुछ लिखना या वहाँ जाकर उनकी जानकारी पाना जैसे मुश्किल कार्य को कई लेखकों ने पुरा किया है।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में "पहाड़ी आंचलिकता" का दौर शुरू हुआ। उसकी गति धीमी होने पर भी महत्वपूर्ण है। पहाड़ी अंचलों में यातायात का अभाव, अज्ञान, अंधश्रद्धा का प्रभाव होने पर भी आज तक आंचलिक उपन्यासकारों ने पहाड़ी भौगोलिकता की उँचाई, प्राकृतिक सुषमा, वहाँ का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन, लोकसभ्यता, संस्कार, मनोरंजन के साधन, वेशभूषा, देवी-देवता, उत्सव पर्व तीज त्यौहार, प्रथा परंपरा आदि का विचार किया है।

बीज शब्द: आंचलिक, पहाड़ी, शोषण, उपेक्षित।

प्रस्तावना –

भारत में स्वातंत्र्योत्तर काल के हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा लोकप्रिय रही है। उपन्यास "मानव जीवन" की पतों को खोलकर हमारे सामने रखता है। हिंदी उपन्यासकारों ने लोकसंस्कृति और लोकजीवन को साहित्य में स्थान देकर "जनवादी साहित्य" को बढावा दिया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी उपन्यास विधा ने एक नया प्रयोगधर्मो मोड लिया है। इसी कारण हिंदी उपन्यासों में नई धरती, नया राग, नया बोध, नई भूमि की आवाज सुनाई देने लगी है। अनदेखी, अनगोदी, अनछुई जमीन को तलाश ने का काम और उपन्यासकारों ने वहाँ जाकर वही के जनजीवन को यथार्थता के साथ चित्रित करने के कार्य हिंदी उपन्यासकारों ने किए है। कई दुर्गम भूभागों की यात्रा करके वहाँ के अदिवासीय जनजीवन को भी तलाश ने का कार्य उपन्यास लेखकों ने किया है। पहाड़ी प्रदेशों में जहाँ अदिवासी रहते है वहाँ यातायात के साधनों की कमी है। वहाँ के लोग प्रगति से कोसों दूर है। वहाँ विज्ञान की हवा अभी तक पहुँच नहीं पाई है। ऐसे पहाड़ी आदिमों के भूभागों की यात्रा करके वहाँ के वास्तव जीवन पर उपन्यास लिखे है। उपन्यासकारों ने अदिवासीयों के जीवन की इसमें अनुभूति और संवेदना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

आंचलिक उपन्यास

हिंदी उपन्यासों के कई प्रकार है। इनमें से आंचलिक उपन्यास यह एक महत्वपूर्ण प्रकार है। इस प्रकार के उपन्यास में किसी अंचल या प्रदेश ग्रामीण वातावरण एवं संस्कृति का चित्रण किया जाता है जैसे 'अंचल' यानी एक 'सीमित क्षेत्र' या 'जनपद' या 'कस्बा'। अंचल का अर्थ "विशिष्ट भूखंड" डॉ. नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार उपन्यास वह है जिसमें अविकसित अंचल विशेष के आदिवासियों के अथवा अदिम जातियों का चित्रण हो। अतः स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यासों में युगीन जीवन के साथ पिछड़े हुए उपेक्षित, अछूत जीवन को वाणी प्राप्त हुई है। फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला अंचल" को शुद्ध आंचलिक उपन्यास माना है तो इसका (आंचलिकता का) उद्भव नागार्जुन के 'बलचनमा' से मानते है लेकिन मूलतः देखा जाए तो प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, निराला आदि के उपन्यासों में आंचलिकता के दर्शन होते है। डॉ. इंदिरा जोशी के अनुसार "आंचलिक उपन्यास किसी विशिष्ट भाग अथवा प्रदेश विशेष को केंद्र बनाकर लिखा जाता है जिसमें जन-जीवन का चित्रण किया जाता है।"² डॉ. इंदिरा जोशी, डॉ. रांगेय राघव और हिंदी के कई विद्वानों ने "मैला अंचल" को हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास माना है। इसलिए रेणुपूर्व युग, रेणुयुग और रेणुत्तर युगों में आंचलिक साहित्य का विकास देखा जाता है।

पहाड़ी आंचलिक उपन्यास -

अंचल¹ शब्द के अर्थ को व्यापकता देते हुए जनजाति मूलक अंचल, नदी अंचल, सागरांचल, पहाड़ी अंचल, विशिष्ट स्थानांचल जैसे अनेक आंचलिक उपन्यास लिखे गए। आंचलिक उपन्यासों में भारतवर्ष के विविध प्रांतों के अंचल में स्थित पिछड़ी जनजातियों (आदिवासीयों) की सामाजिक, आर्थिक राजनितिक, धार्मिक परिस्थितियों को दिखाने का प्रयत्न किया है।

हिंदी उपन्यासकारोंने "पहाड़ी अंचल" को देश को भी आंचलिकता का एक अंग माना है। देश के भौगोलिक भू-भागों की विभिन्नताओं के अनुसार पहाड़ी इलाका आज भी पिछड़ा और अछूता है। यहाँ के लोग अपनी परंपराओं का पालन करते हुए सबसे अधिक मूल्यवान जीवन पध्दती से चिपके हुए हैं। वे इस जीवन पध्दती को किसी भी कीमत पर छोड़ने को तैयार नहीं हैं। इन लोगों की जीवनशैली को खोजने का काम पहाड़ी आंचलिकता ने किया है। पहाड़ी भूभागों को विशिष्ट क्षेत्र मानकर और वहाँ पर निवास करनेवाले आदिम (अदिवासी) जनजातियों का चित्रण करना "पहाड़ी आंचलिकता" है जिसका आधार पहाड़ी जनजीवन है। सही अर्थों में "पहाड़ी आंचलिक उपन्यास वह उपन्यास है जिसमें पात्रों के निर्माण में प्रकृति सहज सहयोग देती रहती है और जनपद के लोगों के जनजीवन का संवेदनक्षम चित्रण होता है।"

हमारे देश के कुछ क्षेत्रों में बाईस प्रतिशत भू-भाग पहाड़ों और जंगलों से घिरा हुआ है और इन पहाड़ी भूभागों में बसी हुई 414 जनजातियाँ हैं जिनको अभी तक सरकार द्वारा चलाई जा रही विकास योजनाओं से जादा लाभ नहीं हुआ है। "सन 1971 की जनगणना के अनुसार आदिवासी लोगों की जनसंख्या 29 लाख 54 हजार अर्थात् उस समय की देश की कुल आबादी के सात प्रतिशत आदिमों (आदिवासी) की आबादी है।"³ आदिम जातियों में अज्ञान, अंधविश्वास अधिक मात्रा में दिखाई देता है। ये आदिम (आदिवासी) अपने इस मर्यादित समूह (कबीलाई जीवन) जीवन में एक अलग विश्व का निर्माण कर चुके हैं और देश के विकास योजनाओं से दूर हैं। ये जनजातियाँ जंगलों पर आधारित वनैपजों, शिकार, मधुमक्खी पालन, खेती आदि के आधार पर जीवनयापन कर रहे हैं जिनका चित्रण करनेवाली रचनाएँ "पहाड़ी आंचलिक उपन्यास हैं"।

"पहाड़ी आंचलिकता" का सूक्ष्म अर्थ है सिर्फ उबड़-खाबड़ और पथरीली चट्टानों से युक्त भूमि का वर्णन ही नहीं अपितु वहाँ के अज्ञानी, अशिक्षित शोषित, पीडित, उपेक्षित, दुखी मानव मन का चित्रण भी है जो उनकी मानसिकता की पतों को खोलता है। "पहाड़ी अंचल" "आंचलिकता" का नया और अनछुआ प्रकार है उसपर कुछ लिखना या वहाँ जाकर उनकी जानकारी पाना जैसे मुश्किल कार्य को कई लेखकों ने पुरा किया है।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में "पहाड़ी आंचलिकता" का दौर शुरु हुआ। उसकी गति धीमी होने पर भी महत्वपूर्ण है। पहाड़ी अंचलों में यातायात का अभाव, अज्ञान, अंधश्रद्धा का प्रभाव होने पर भी आज तक आंचलिक उपन्यासकारों ने पहाड़ी भौगोलिकता की उँचाई, प्राकृतिक सुषमा, वहाँ का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन, लोकसभ्यता, संस्कार, मनोरंजन के साधन, वेशभूषा, देवी-देवता, उत्सव पर्व तीज त्यौहार, प्रथा परंपरा आदि का विचार किया है।

आज हम इस शोधपत्र के माध्यम से पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव-पर्व-तीज-त्यौहार पर प्रकाश डालेंगे। ये पहाड़ी आंचलिक उपन्यास और उनके लेखक इस तरह हैं। जैसे शिवशंकर शुक्ल लिखित "भोगरा", सत्यप्रकाश पांडेय लिखित "चंद्रवदनी भगवतीप्रसाद शुक्ल लिखित "खारे जल का गाँव" नरेंद्र वर्मा लिखित "सुबह की तलाश", हिमांशु जोशी लिखित "कगार की आग", शैलेश मटियानी कृत "गोफुली गफुरन", राजेंद्र अवस्थी लिखित "जाने कितनी आँखें, शानी लिखित "शालवनों के द्वीप" तथा शिवप्रसाद सिंह लिखित "शैलूष शिवानी लिखित" भैरवी, राजेंद्र अवस्थी लिखित "जंगल के फूल" और सूरज किरण की छाँव" उपर्युक्त पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में बस्तर, अबुझमाड, उत्तरांचल, पूर्वांचल, हिमांचल नैनीताल, अलमोडाअंचल, विध्यांचल, बुंदेलखंड, छत्तीसगड, सुखापहाड, कुर्मांचल आदि भागों में स्थित माडिया गोंड, ओरछा, करनट, शिल्पकार, मुस्लिम बंजारा मुंडा आदि कई पहाड़ी अंचल के लोकजीवन का वर्णन किया है। आज हम यहाँ इस शोधपत्र में उपर्युक्त पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव-पर्व-त्यौहारों पर प्रकाश डालकर वहाँ के आदिम जनजाति का समाज जीवन देखेंगे।

पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव -पर्व -त्यौहार -

मानव का सामाजिक विकास उत्सव के कारण ही होता है। इसी कारण भारत देश में उत्सव, त्यौहारों का सबसे अधिक महत्व है। जैसे-जैसे धर्म का विकास हुआ नई देवी - देवता, नए संप्रदाय, नए अवतारों को मान्यता दी गई वैसे - वैसे उत्सवों की संख्या बढ़ने लगी। उत्सव, त्यौहारों के मूल में धार्मिक भावना ही दिखाई देती है। पर्व- त्यौहारों का सीधा संबंध रीति - रिवाज से है। हिंदू संस्कृति एवं समाज व्यवस्था में हर दिन का कुछ-न-कुछ विशेष महत्व रहता है। नागरी समाज की अपेक्षा ग्रामीण एवं पहाड़ी समाज जीवन में उत्सवों - पर्वों की प्रथा अधिक लक्षित होती है। महादेवशास्त्री जोशी जी ने उत्सव के चार भेद माने हैं – "1) देवताओं के सम्मान के लिए उत्सव, 2) देवताओं की कृपा के लिए उत्सव, 3) धर्म प्रवर्तक एवं महात्माओं के पुण्यस्मरण के लिए उत्सव, 4) प्राकृतिक एवं पंचमहाभूतों के लिए उत्सव।"⁴ इसके साथ-ही-साथ पितृ पूजा, ऋतुपरिवर्तन पूजा, गण तथा ग्राम देवता, खेती कर्म आदि संबंधित भी उत्सव होते हैं। स्थानीय परिस्थिति, जाति, संस्कृति, सामाजिकता के संकेत, विश्वास तथा प्रथा आदि के कारण उत्सवों - त्यौहारों में विविधता दिखाई देती है। मगर ये सभी उत्सव -पर्व समाज जीवन का अंग बने हैं। सभी लोग उल्लास आनंद के साथ हर उत्सव मनाते हैं। इसी कारण महादेवशास्त्री जोशी कहते हैं, "जिस धार्मिक समारोह में लोगों को हर्ष, आनंद और मन:प्रसाद की अनुभूति मिलती है उसे "उत्सव" कहा जाता है।"⁵ उत्सव -पर्व-त्यौहारों में सांस्कृतिकता एवं

भावात्मकता तथा एकता दिखाई देती है। धार्मिक भय की भावना, अंधविश्वास, श्रद्धा, किंवदंति कथा, उत्सव-पर्व के साथ जुड़ी हुई हैं।

देश-प्रेम विकसित करना, मानिसक शांति की प्राप्ति, यात्रा करना, धार्मिक शिक्षा देना, सामुहिक एकता, जीवन में चेतना जागृति करना, मनोरंजन करना, थकावट दूर करना, दुख से छुटकारा पाना, संस्कृति का ज्ञान देना आदि कारणों से उत्सव मनाए जाते हैं। लोकगीतों की परंपरा में प्रत्येक उत्सव के लिए निश्चित और निर्धारित गीत रहते हैं। ज्यादातर देवी - देवता के नाम पर उत्सव मनाए जाते हैं। हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यासकारों ने इस पर सोचा है - दीपावली, होली, मकर संक्राति, इरपूपांडुम, नुकानोरदाना पांडुम, काकसार पर्व, थौलमाता, बिदाई पर्व, लाडूकाज, नंदा मैया का मेला, शिव - पार्वती का मेला, नवरात्र, रामनवमी, सिरी पंचमी, वन मोहत्सव, टेसू पर्व, कारसदेव पर्व, हुडका बैल पर्व आदि उत्सव-पर्व पहाड़ी जनजातियों में मनाए जाते हैं। पहाड़ी अंचलों में स्थित जनजातियाँ भौतिक प्रगति, विज्ञान की धारा से सुदूर अंचल में अपना अप्रगत जीवनयापन कर रही हैं। मनोरंजन के साधनों का अभाव, सामुहिकता की भावना, धर्म की रक्षा के कारण पहाड़ीजन आज भी अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा कर रहे हैं। हम आलोच्य उपन्यासों के उत्सव - पर्व - त्यौहारों पर सोचेंगे।

"मोंगरा" में छत्तीसगढ़ के रड़पुरा गाँव का चित्रण हुआ है। यहाँ लोग दीपावली और होली का त्यौहार धूमधाम से मनाते हैं। यहाँ होली उत्सव पर बांस बजाना, गीत गाना आदि होता है। दीवाली में चारों ओर दीपों का उजाला कर रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर लोग उत्सव मनाते हैं। औरतें -और पुरुष गाना गाकर अपना आनंद प्रकट करती हैं, जैसे-"थनवारिन ने अपने साथ की लडकियों से कहा चलो गोई गाएँ फिर सभी लडकियों ने

"सुअना रेसुअना, भई मोरे सुअना
पहली गवन के मैं डेहरी बइठारेंव
कि गोसइया गये रन जूझ ...।"⁶

यह गाना अपनी कम्मर झुकार ताली बजाते हुए शुरु कर दिया। इस अवसर पर सुआ गीत प्रकार गाया जाता है।

"चंद्रवदनी" में उत्तराखंड पावन पर्वतांचल के हिंडोली खाल पर्व, नवरात्र आदि उत्सव पर्वों का चित्रण किया है। हिंडोलाखाल पर्व में ढोल और दमों की गूँज तीव्र होती है। हिंडोलाखाल पर्व में जुलूस निकालते हैं, "प्रौढ, वृद्ध और स्त्रियाँ जुलूस के सबसे पीछे होती हैं तथा ढोल दमों जिस ताल पर बजते, उसी ताल पर नाचते, कूदते नौजवान भैसों पर दनादन प्रहार करते हुए तामसिक एवं रौद्र रूप का प्रदर्शन करते हैं"⁷ इस तरह यह मेला रौद्र लीला का रूप दिखाता है अतः नवरात्र उत्सव के अवसर पर भक्तों से पैसे लेकर भक्तों के स्तर बनना, यह धन कमाने की प्रथा दिखाई देती है। स्पष्ट है यहाँ सांप्रदायिकता की दग्धता एवं झूठी धार्मिकता में पहाड़ी अंचल जल रहा है।

"खारे जल का गाँव" में विंध्याचल में स्थित मकर संक्रांति के समय गोदावल मेला लगता है। इसमें शिव-पार्वती का विवाह होता है आदि रूप में यहाँ उत्सव पर्व मनाते हैं। उन पर्वों में सभी जाति के लोग शामिल होते हैं। साल में एक बार सोननदी के पास के देवगाँव के गोदावल कुंड पर "गोदावल मेला" आयोजित किया जाता है, जिसमें सभी धर्मों के लोग सम्मिलित होते हैं। जातीय भेदभागवत यहाँ नहीं होता। "दो-दो चार चार का गोल बांधकर मर्द - औरते, बच्चे-बूढ़े-प्रौढ गोदावल कुंड में पुण्य स्नान करने के लिए चल पडते हैं। अतः ये लोग मकर संक्राति के लिए तिल के लड्डू, लाई-फूटा, खिचड़ी अपनी -अपनी पोटली में बांधकर मेले में जाने की तैयारी करते हैं।"⁸

"सुबह की तलाश" में ग्रामोत्सव मनाया जाता है। गाँव के स्कूल में ही जलसा होता है। अतः इस ग्रामोत्सव में स्कूल के लडकें मूकभिनय-ढोला-मारु करते हैं जो छत्तीसगढ़ की प्रसिद्ध गीत-कथा है। उसे देखने के लिए आसपास के गाँव के लोग आते हैं अतः गाँव में नवरात्र उत्सव भी मनाया जाता है। पहले दिन जंवारा के गीत सारे गाँव में गाए जाते हैं और गाते गाते गवैयों पर देवता भी चढ जाते हैं। इस तरह यह मेला उत्सव धार्मिक अंधश्रद्धा को दर्शाता है।

"कगार की आग" "देवीधूरे" का मेला मनाया जाता है देवीधूरे के मेले में गोमती और धरी साथ - साथ गई थीं, दोनों सहेलियों ने मेले में "सारी - सारी रात झोंटे गाए थे। हुडके की ताल तर थिरकती रही थीं - उडती रही थीं हवा में।"⁹ अतः यहाँ पहाड़ी लोग नारियाँ मेले में उत्साह से सम्मिलित होते हैं और मेले का आनंद लुटते हैं। लोहाघाट में "फूलडोल" का मेला मनाया जाता है। "मेले में जाकर खुशाल ने खुले हाथ से खर्च किया। गोमती के लिए फंदे खरीदें, चूड़ीयाँ खरीदीं, माथे पर लगाने के लिए बड़ी-बड़ी लाल बिंदियाँ खरीदीं। चटक - मटक रेशमी रुमाल!"¹⁰ इस तरह मेले में अनेक चीजें खरीदती है तथा पुरुष भी मेले का पूरा आनंद उठाते हैं, लगता है यहाँ त्यौहार खुशियों का ही "पर्व" है।

"गोपुली गफूरन" में अलमोड़ा की शिल्पकारीन जाति की व्यथा-कथा है। उनमें स्थित नंदा मैया का मेला, हुडका बैल आदि उत्सव -पर्व दिखाई देते हैं। नंदा मैया के मेले में सभी लोग सम्मिलित होते हैं। गोपुली कहती है "देबा दिदी, बस उस बरस

जलेबी जैसी जलेबी खाई थी - नंदा मैया के कौतुक में।¹¹ अतः मेलों में मिठाइयाँ खाना, पहाड़ी नारी का शौक है तो देबुली गोपुली से कहती है, "मैंने तो जलेबी यहीं सेराघाट में खाई है, उत्तरायणी के मेलों में, वो भी तेल की।"¹² तो "हुडकाबैल" मेले को सामुहिक श्रम की उपासना का मेला कहा जाता है। "जिस खेत में गोडना शुरु होता है - पूर्व की तरफ से एक किनारे बौल लगानेवाले लोकनायक खड़े रहते हैं। भूमि-देवता, पशु - देवता और अन्य देवताओं की आराधना के बाद, अब बफौलों की वीरगाथा शुरु होती है। सारे पुरुषों और औरतों को एक लय में कर दिया है संगीत भरी गाथा ने।"¹³ इस तरह यह मेला श्रम की थकावट दूर करनेवाला मेला है।

"जाने कितनी आँखें" में खम्हार खेडा गाँव में देवी मेला मनाया जाता है। सारा गाँव देवी को कुछ ना कुछ भेंट चढ़ाता है। बुंदेलखंड के अहीर और कुरमियों के आराध्यदेव "कारसदेव" का मेला मनाया जाता है। कारसदेव के सम्मान में जो समारोह होता है उसमें सारे पहाड़ीजन उपस्थित रहते हैं। अतः कारसदेव को रिझाने के लिए पंचारे गाए जाते हैं। बुंदेलखंड में टेसू पर्व साधारणतया कार्तिक में मनाया जाता है। इस उत्सव में गाँव के किसी भी लडके को टेसू बनाया जाता। टेसू का सारे गाँव में जुलूस निकलता है, हर घर वह टेसू जाता है। "इस साल सुवेगा टेसू बनी। उसके साथ दो सहेलियाँ चलीं। पीछा किया गाँव भर के लडके - लडकियों ने। घर चाहे मुसलमान हो चाहे हिंदू टेसू को दान देना जरूरी है।"¹⁴ अतः यहाँ पहली बार नारी टेसू बनी है इस तरह पहाड़ी नारी हर उत्सव पर्व में सम्मिलित होकर पुरानी प्रथा को तोड़कर आनंद उठाती है।

"शाल वनों का द्वीप" में अबूझमाड के माड़ीया गोंडों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि चित्रित की है। यहाँ माता बिदाई तथा काकसार पर्व मनाते हैं। काकसार पर्व जीवनसाथी तलाश ने का पर्व है। इसी कारण ये लोग काकसार पर्व की प्रतीक्षा करते हैं। इसमें प्रेमी-प्रेमियों का मिलना, एक-दूसरों को पसंद करना, वैवाहिक बंधन होना, उसके बाद गाँव में विवाह का सिलसिला शुरु होना, अतः इसमें गोत्र देवता की पूजा करना, बलि चढ़ाना तथा प्रार्थना करना, नगाड़े के ध्वनि बजाना, भोजन करना, लुस्के के शरीर में देवता का प्रवेश होना, नृत्य करना, गाना गाना, नृत्य में युवकों द्वारा युवतियों को आकर्षित करना, अंत में एक - दूसरे की अनुमति से झाड़ीयों की ओर जाना। "काकसार की सबसे बड़ी विशेषता तथा विचित्रता यही है की वहाँ आकर्षण का केंद्र युवक होता है युवती नहीं। नृत्य के दौरान प्रत्येक नर्तक इस बात पर प्रयत्नशील रहता है कि ज्यादा-से-ज्यादा आकर्षक वहाँ दिखे ताकि युवती भी आकर्षित होकर पास चली आए नाच के लिए उसके संग की कामना करे।"¹⁵ इस तरह ये पर्व युवतियों को पति चुनने का अवसर देता है।

माता बिदाई समारोह ओरछा में प्रकोप के फैलने पर मनाया जाता है। सारा गाँव मंदिर में इकट्ठा होता है। प्रकोपित लोगों का घुटनों पर बैठना, लस्के (मांत्रिक) में माता -दाई का संचार होना, जुलूस का शीतला माता मंदिर के पास पाहुँचना, कोपित व्यक्तियों में से किसी एक को देवी के पास बुलाना, बलिदान के रूप में एक रुपया, एक मुर्गी, बकरा, सूअर देने का आदेश होना, उपस्थित भीड़ द्वारा गाँव से देवी को बिदा करना इससे बीमारी का हटना, लोगों के हाथ में सूअर, मुर्गी, बकरा आदि का होना, भीड़ में हलचल शुरु होना, देवी के माथे पर टिका लगाना, लस्के द्वारा कोपित व्यक्तियों को भेंट देना, बलिदान स्थल पर बलि देना, अंत में घोटुल में शराब पीकर विराट भोजन का आयोजन करना। इस बारे में लेखक लिखते हैं, "माता बिदा के लिए आज सारा गाँव मंदिर के सामने इकट्ठा हो गया है। हर हृदय आभार और श्रद्धा से भरा हुआ। जो अछूते रहे वे तो कृतज्ञताभार से नत हैं, जिन पर कुपित होने के बाद भी माता दया कर, कई उनके मन के आभार व श्रद्धा को बता सकना साधारण बात नहीं।"¹⁶ इस तरह यहाँ पहाड़ी जनों में उत्सव पर्व का स्थान अत्यंत श्रद्धात्मक रहा है।

'शैलूष' में विध्यांचल के रेवतीपुर के उत्सव पर्वों का चित्रण हुआ है। ये लोग रामनवमी, नवरात्र आदि उत्सव मनाते हैं। नवरात्र के समय सती मइया के मंदिर के पास मेले का आयोजन किया जाता है तो रामनवमी पर्व में सभी लोग उपस्थित रहते हैं। "कब तक पुकारं" में होली, दीवाली पर्व मनाकर खुशियाँ लूटाते हैं। होली के उत्सव पर नाच-गाने का आयोजन करते हैं। 'अरण्य' में कुर्मांचल अलमोडा के उत्सव-पर्व के दर्शन होते हैं। यहाँ अंचलों में सामुहिकता दिखाई देती है जिसके बल पर सब उत्सव पर्वों का आनंद उठाते हैं। वनमहोत्सव, हरेल का मेला, नवरात्र, सिरी पंचमी, देवीधूर का मेला आयोजित करते हैं। अलमोडा अंचल का "वनमहोत्सव" सदियों पुराना पर्व है। लेखक लिखते हैं, "गाँव गराम के बच्चों ने नए उत्साह के साथ "दक्षिणायन का स्वागत किया। कन्याओं ने, बहू बेटियों ने वृक्षों की वंदना की वन महोत्सव का सदियों पुराना पर्व यों प्रारंभ हुआ।"¹⁷ अतः दशमी के दिन 'फाटकशिला मेला' शुरु होता है और सिरी पंचमी का त्योंहार भी बड़े उत्साह से मनाया जाता है। देवीधूर मेले में हजारों की संख्या में बुढ़े, बच्चें, औरतें, मर्द सजधजकर आते हैं। रंगीली औरतें मर्द सजधजकर आते हैं। "रंगीली औरतें, रंगीले मर्दों के झुंड-झुंड बैरा गा रहे थे, औरतें उसकी बाहें थामकर नाचने के लिए लालायित रहती।"¹⁸ इस तरह यहाँ वनमहोत्सव तथा अन्य उत्सव पर्वों में नारियाँ तथा पुरुष अपार खुशियाँ लूटाते हैं अतः वनमहोत्सव एक अनोखा पर्व लगता है जिसकी आज भी आवश्यकता लक्षित होती है। इसके सहारे वृक्षों का संवर्धन होगा। प्रायः वृक्ष प्रेमी पहाड़ीजनों के यहाँ दर्शन होते हैं।

‘भैरवी’ में कुमायूँ अंचल में स्थित शिवरात्री के मेले का वर्णन मिलता है। बीहड के जंगल में “बड़े मेले” का आयोजन किया जाता है, जिसमें हिंदू- मुसलमान सभी सम्मिलित हाते हैं वे सभी शिव के भक्ता होते हैं। यह मेला सांप्रदायिक एकता का प्रतीक है।

‘जंगल के फूल’ में लाडूकाज, दीवारी, कारापांडुम, इरपूपांडुम, नुकानोरदाना पांडुम आदि उत्सव पर्व मनाते हैं। लाडूकाज पर्व को गोंड वर्ष में एक बार मनाते हैं, इसमें नारायण देवता की पूजा करके भूत-प्रेत चुडैल से गाँव की रक्षा की प्रार्थना की जाती है। दीवारी उत्सव में ‘घोटुल’ के सदस्य नाचगाने में मग्न होते हैं। कारापांडुम त्यौहार के समय रातभर नाचगाना होता है और प्रातःकाल में नारदेवी के पास पशुओं की बलि दी जाती है। ‘इरपूपांडुम’ भी इसतरह मनाया जाता है। नुकानोरदाना पांडुम में सब लोग देवता को इस तरह प्रार्थना करते हैं - "हे देवता, इसी तरह हमारे गाँव हर साल सोना उगलें।"¹⁹ इस अवसर पर देवता को बलि चढाई जाती है। यहाँ स्पष्ट है की उत्सव-पर्व जैसे धार्मिक संस्कार के समय बलि देकर देवी - देवता को प्रसन्न कराने की प्रवृत्ति अज्ञान, अंधश्रद्धा का प्रतीक है।

"सूरज किरन की छाँव" में बंजारा, मुंडा जनजाति में स्थित उत्सव पर्व का चित्रांकन हुआ है। ये पर्व देवी देवता से संबंधित रहे हैं। यहाँ हरपूपांडुम, मरुका पांडुम, नुकानोरदाना पांडुम मनाते हैं। बंजारी इस त्यौहार का इस प्रकार वर्णन करती है - “नुकानोरदाना पांडुम का त्यौहार था। गाँवभर की लडकियाँ रीना नृत्य गा रही थी।”²⁰ यहाँ लडकियाँ नाच-गाकर अपने प्रिय उत्सव मनाती हैं। यहाँ पर "रीना" आदिवासी युवतियों का प्रिय नृत्य है। इस तरह यहाँ उत्सव पर्व के अवसर पर महिलाओं का विशेष नृत्य गान होने के कारण उत्सव का महत्व दिखाई देता है।

निष्कर्ष -

आलोच्य उपन्यासों में वर्णित त्यौहारों का उद्देश्य सांप्रदायिक एकता बनाना, वृक्ष संवर्धन करना, कुरीति को मिटाना, विवाह की पूर्व पृष्ठभूमियाँ बनाना, सामाजिक एकता को बढावा देना रहा है। आज वर्तमान समाज व्यवस्था में इन सभी गुणों की आवश्यकता है अतः इन त्यौहारों के कारण अच्छे गुणों का विकास होना स्वाभाविक है तो इन त्यौहारों में बलि देने की प्रथा मानवहित के लिए ठीक नहीं है। पशु हत्या एक पाप है। इन उत्सव-पर्व त्यौहारों में सभी पहाड़ी जन सम्मिलित होते हैं अतः इस मौके पर पुरुष तथा नारियों का एक साथ गाना, नाचना और श्रम की थकावट दूर करना, सामुहिक भोजन करना, रोजमर्रा के भोजन से अलग स्वादिष्ट भोजन होना, मेले में नारियों का अनेक शृंगार वस्तुएँ तथा नए कपड़े खरीदना, देवी-देवताओं की आराधना करना आदि क्रियाएँ इनको अपना दुख भूलाकर आनंद प्रदान करती हैं। यहाँ इन उत्सव पर्वों के मूल में धार्मिक भावना का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है अतः ये उत्सव-पर्व त्यौहार राष्ट्रीय एकात्मता बढाने तथा वृक्षसंवर्धन के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इसी त्यौहारों के कारण पहाड़ी लोग अदिवासी विकास गति में प्रवाहित हो सकते हैं, मगर इन उत्सवों को राष्ट्रीय स्तर पर स्थान मिलना आवश्यक है। उत्सवप्रियता मनुष्य की प्रवृत्ति है। नए कपड़े पहनना, गीत गाना, नृत्य करना, मेले में शामिल होना, मिठाइयाँ तथा वस्तु खरीदना आदि के दर्शन यहाँ होते हैं। यहाँ परंपरागत ढंग से उत्सव मनाने की प्रवृत्ति है। कई उत्सव मानव के लिए उपयुक्त हैं, जिसमें जीवनसाथी चुनने की प्रक्रिया होती है जैसे- टेसू पर्व, गोदावल मेला, नुकानोरदाना पांडुम। आज के व्यस्त जीवन में भी खुशियाँ बाँटने के लिए, सुखी जीवन के लिए इसी तरह के उत्सवों की अनिवार्यता लक्षित होती है।

संदर्भ ग्रंथ - सूची

- 1) सारिका (पत्रिका), 1969 पृ.91
- 2) हिंदी आंचलिक उपन्यास - डॉ. इंदिरा जोशी, (देवसागर प्रकाशन, जयपूर, प्र. स. 1985) पृ. सं. 17
- 3) भारतीय अदिवासी - डॉ. गुरुनाथ नागगौडा कॉन्टीनेंटल प्रकाशन, पुणे. प्र.स. 1979 पृ.14
- 4) मुलांचा संस्कृति कोश खंड- 1, संपा. महादेवशास्त्री जोशी (भारतीय संस्कृति कोश, पुणे.) पृ. 185
- 5) ‘वही’ पृ. 186
- 6) मोगरा - शिवशंकर शुक्ल, राजपाल अँड सन्स, दिल्ली प्र.स. 1990, पृ. 5-6
- 7) चंद्रवदनी - सत्यप्रसाद पाण्डेय - नैशलन पब्लिशिंग हाऊस हरियागंज, दिल्ली. प्र.स. 1971 पृ. स. 16.
- 8) खारे जल का गाँव - भगवतीप्रसाद शुक्ल, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद. प्र.स. 1972, पृष्ठ - 9
- 9) कगार की आग - हिमांशु जोशी - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली. प्र.स. 1976, पृ.5
- 10) ‘वही’ - पृ.36

- 11) गोफूली गफूरन - शैलेश महियानी, सरस्वती विहार, दिल्ली – 32 प्र.स. 1971, पृ.स. 15
- 12) 'वही' - पृ.सं. 16
- 13) 'वही' - पृ. स. 53
- 14) जाने कितनी आंखे - राजेंद्र अवस्थी - हिंदी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन वाराणसी, दूवि. 1981, पृ. 120.
- 15) शाल वनों का द्वीप - शानी, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस दरियागंज, दिल्ली प्र.सं. 1971, पृष्ठ, सं, 61
- 16) "वही" - पृष्ठ सं. 49-50
- 17) अरण्य - हिमांशु जोशी - किताबहार, नई दिल्ली, द्वी.सं. 1993 पृ. 17
- 18) "वही" - पृ. सं. 117
- 19) जंगल के फूल - राजेंद्र अवस्थी - राजपाल अॅन्ड सन्स, दिल्ली, द्वि सं. 1996, पृ सं. 19